

नियोग मीमांसा

आचार्य अग्निव्रत

॥ ओ३म् ॥

आषाढ़ कृष्णा अमावस्या वि.सं. २०८३,
सृष्टि सम्वत् १९६०८५३१२७

सावधानी

पाठकगण! कृपया इस लेख को ध्यान से पूरा पढ़ने का कष्ट करें। अधूरा पढ़ने पर भ्रान्ति हो सकती है।

वेबसाइट— www.vaidicphysics.org

॥ ओ३म् ॥

नियोग-मीमांसा

नियोग विषय को लेकर कुछ लोग सत्यार्थ प्रकाश, ऋषि दयानन्द एवं आर्यसमाज की अशिष्टतापूर्वक निन्दा करते हैं, उनको दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। इनमें प्रथम वर्ग में वामपन्थी नास्तिक तथा कुछ अनपढ़ तथाकथित सन्त लोग हैं, जिनका उद्देश्य सभी प्राचीन आर्ष ग्रन्थों एवं वेदादि शास्त्रों की निन्दा करके जनसाधारण को इन शास्त्रों से दूर करना है। सर्वप्रथम हम इनको ही उत्तर देना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि वेदादि शास्त्र विरोधी इस धरती पर सबसे बड़े मानवता-विरोधी हैं, जो वर्तमान युवा पीढ़ी को अपने वाग्जाल में फँसाते जा रहे हैं। ये पतित लोग इस विषय को लेकर ऋषि को नियोगी दयानन्द आदि-आदि नाना अपशब्दों से सम्बोधित करते हैं। तो आइए हम इस पर विचार करें—

नियोग विषय पर विचार करने से पूर्व हमें ऋषि के उन-२ मन्तव्यों पर विशेष ध्यान देना चाहिए, जो जितेन्द्रियता को अति आवश्यक मानते हैं। सर्वप्रथम तो महर्षि दयानन्द जी की मान्यता यह है कि जो युवक वा युवती जितेन्द्रिय रह सकें तथा

राष्ट्र व समाज का विशेष हित करना चाहें, वे विवाह ही न करें, परन्तु ऐसा संकल्प करने वालों को सचेत भी करते हैं कि यह काम पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है।[१] यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम के वेग को थाम कर इन्द्रियों को अपने वश में रखना, परन्तु ऋषि की भावना अवश्य यह है कि जो ऐसा कर सकते हैं, वे अवश्य करें।

इस प्रकार की तैयारी के लिए अथवा वैदिक विचारानुकूल गृहस्थ बनने के लिए वे उनके माता-पिता द्वारा गर्भाधान से ही तैयारी आवश्यक मानते हैं। वे शिक्षा विषय को प्रारम्भ करते हुए द्वितीय समुल्लास के आरम्भ में ही एक आर्ष वचन को उद्धृत करते हैं— **'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद'** अर्थात् माता-पिता व आचार्य को अच्छा शिक्षक होना चाहिए, तभी सन्तान उत्तम होगी। उस समुल्लास के पूर्व प्रथम समुल्लास में परमेश्वर के सर्वोत्तम ज्ञान की विशद चर्चा करते हैं। उन्होंने एक सौ नामों की व्याख्या से ईश्वर के स्वरूप का वह गागर में सागर भरा है, जो अन्यत्र कहीं भी एक साथ

[1] सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास एवं संस्कृत वाक्य प्रबोध

मिलना शायद सम्भव नहीं हो सके। इन सौ नामों से परब्रह्म परमेश्वर के स्वरूप का व्यापक ज्ञान हो सकता है। इस स्वरूप को समझने व तदनुसार उस ईश्वर को जानने, मानने तथा तदनुकूल आचरण करने वाला निःसन्देह विमल ज्ञानी होने के साथ–साथ विमल चरित्र वाला भी हो जाता है। इतने ज्ञानी व पवित्र पुरुष के लिए भी प्रथम विवाह की योग्यता निर्धारित करते हुए चतुर्थ समुल्लास में भगवद् मनु महाराज को उद्धृत किया है—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्।।

अर्थात् जो पूर्ण अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अर्थात् स्वप्न में भी वीर्य स्खलन न हुआ हो, ऐसी पूर्ण जितेन्द्रियता युक्त पुरुष वा स्त्री ने चारों वेद, तीन, दो वा कम से कम एक वेद का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन नहीं किया हो, उसे गृहस्थ बनने का ही अधिकार नहीं।

यहाँ साङ्गोपाङ्ग पढ़ने का अर्थ यह न समझा जाये कि वर्तमान विद्वानों की भाँति साधारण शब्दार्थ लेना ही वेदाध्ययन है, यह सर्वथा अनुचित है। गोपथ ब्राह्मण में कहा है कि वेदज्ञ

ब्राह्मण अशून्य हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि वेदज्ञ सृष्टि के सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान अर्थात् जड़ व चेतन (ईश्वर व जीव) सबका सम्पूर्ण विज्ञान प्राप्त कर लेता है और तदनुकूल ही उसका जीवन हो जाता है। ऐसे सुविज्ञ व सम्पूर्ण व्यक्तित्वयुक्त व्यक्ति, चाहे पुरुष हो वा स्त्री, को ही विवाह का अधिकार है। यदि कोई कहे कि यह तो अन्यों के अधिकार का हनन है, तो वह यह बात ध्यान रखे कि विवाह मात्र व्यक्तिगत इच्छा की पूर्ति का साधन नहीं है, बल्कि विवाह सम्पूर्ण परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण कारक है। दुष्टों का विवाह संसार में दुःखों की ही वृद्धि करने वाला होगा, जबकि सज्जनों का विवाह संसार के लिए कल्याणकारी होगा।

जब विवाह की यह योग्यता है, तब नियोग की व्यवस्था भी इसी योग्यता के आधार पर होगी। इसका अर्थ यह है कि प्रथम तो पूर्ण जितेन्द्रिय व परोपकारी विवाह ही न करें और यदि करें भी, तो उपर्युक्त योग्यता अनिवार्य है। इस प्रकार के माता–पिता गर्भाधान से पूर्व, मध्य और पश्चात् शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करें, वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों

का सेवन करें, जिससे रजवीर्य भी दोषों से रहित होकर गुणयुक्त हो। इसके पूर्व पठन काल में अष्ट मैथुनों से पूर्ण पृथक् रहें। तदुपरान्त बलादि से युक्त स्त्री–पुरुष गर्भाधान विधिपूर्वक करें तथा गर्भ ठहरने से एक वर्ष पर्यन्त परस्पर कभी शारीरिक सम्पर्क नहीं करें।

ऋषि का कथन यह है कि मनुष्य पूर्ण ऋतुगामी हो। इस विषय में पशु भी हमारे आदर्श हो सकते हैं, जो बिना ऋतुकाल के मादा के पास जाते तक नहीं हैं। ऋषि का मन्तव्य यह है कि सन्तानोत्पादन हेतु ही शारीरिक सम्बन्ध होवे। जब सन्तान की इच्छा नहीं हो, तो कभी शारीरिक सम्बन्ध करे ही नहीं। जिन मनु के इस वाक्य पर लोग उपहास कर सकते हैं कि अधिकतम १० सन्तान तक उत्पन्न करें, वे यह भूल जाते हैं कि जिन्होंने घृणित सन्तति निरोधकों द्वारा सारे जीवन स्वेच्छाचारिता में सारे रिकॉर्ड तोड़ रखे हैं और वे '**हम दो हमारे दो**' को आदर्श मानकर दिखावे में संयमी बनते हैं। क्या किसी पशु को ऐसा करते किसी ने देखा है? वे भला उन मनु (जो कहते हैं कि जीवन में अधिकतम १० बार ही शारीरिक सम्बन्ध रखो) पर क्या व्यंग्य कर सकते हैं? है कोई मनु विरोधी, जो ऐसी अधिकतम व्यवस्था में भी रह सकता है?

अर्थात् अपने जीवन काल में मात्र दस बार ही शारीरिक सम्बन्ध रखने का संयम दिखा सकता है? वह शारीरिक सम्बन्ध भी सुसन्तान की प्राप्ति के उद्देश्यमात्र के लिए हो, न कि विषय भोग के लिए।

अब हम नियोग व्यवस्था पर आते हैं। यहाँ तक लिखने का भाव यह है कि ऋषि का स्तर अत्युच्च कोटि का था। वे अपने विचारों को अपने स्तर से ही संसार को देने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें आचरण की मर्य्यादाओं में किञ्चित् भी स्खलन स्वीकार नहीं है। उनके स्तर तक सोचने का मस्तिष्क व चित्त आज के श्रेष्ठतम कहाने वाले मनुष्यों में भी नहीं है। जो उद्देश्य विवाहित स्त्री–पुरुषों के शारीरिक संयोग का होता है, वही उद्देश्य नियोग का भी होता है। केवल अन्तर यह है कि नियोग अस्थायी व आपात्–काल की व्यवस्था है, जबकि विवाह का उद्देश्य न केवल सन्तानोत्पत्ति है, अपितु समाज को एक व्यवस्थित व श्रेष्ठ रूप देना भी है और यह आजीवन स्थायी व्यवस्था है।

इसके अतिरिक्त दोनों ही व्यवस्थाओं का उद्देश्य समाज, राष्ट्र वा विश्व को एक श्रेष्ठ सन्तान देना होता है। यह बात

ध्यातव्य है कि संसार में सबसे बड़ी सम्पत्ति धर्मात्मा, प्रतिभावान् एवं बलवान् सन्तान ही है। इसके विपरीत गुणों वाली अर्थात् दुर्गुणी सन्तान इस धरती पर भार रूप है। कल्पना करें कि आज इस अंधकार भरे युग में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम व योगेश्वर श्री कृष्ण एवं देवी सीता व देवी रुक्मिणी जैसी सन्तान जन्म लेने लगें, तो कोई कारण नहीं कि यह संसार फिर से स्वर्ग न बने। आज क्रूर पिशाचों के ताण्डव से मानवता पर भयंकर संकट है। यदि आज कोई भगवान् श्रीराम व भगवान् श्री कृष्ण जैसा पुरुष आ जाये, तो इस धरती व मानवता के सकल सन्ताप मिटा सकता है। ऋषि दयानन्द का यही स्वप्न था कि देश व विश्व में श्रेष्ठ सन्तान का ही जन्म हो, पापी व अकर्मण्य सन्तान का नहीं। इसी कारण वे भगवान् मनु की श्रेष्ठतम मर्यादा के अनुसार विवाह का विधान करते हैं। ऋषि दयानन्द की भावना का उपहास करने वाले क्या जानें ऋषियों व देवों की महती पावनी परम्परा को। आज ऐसी दिव्य सन्तान ही इस धरती की सबसे बड़ी धरोहर है, जिसके लिए ही स्त्री व पुरुषों के शारीरिक सम्बन्ध का विधान है, फिर चाहे वह विवाह के माध्यम से हो अथवा विशेष आपत्तिकाल एवं अपरिहार्य अवस्था में नियोग की तात्कालिक अस्थायी

व्यवस्था के माध्यम से हो। ध्यान रहे कि दोनों ही व्यवस्थाओं पर सामाजिक अनुमति की मुहर लगाना अनिवार्य है। इसके बिना दोनों ही व्यवस्थाएँ व्यभिचार की श्रेणी में आ जाती हैं।

यहाँ मैं इस प्रकार के अनपढ़ व असभ्य निन्दकों को इसकी पुष्टि में वेदादि शास्त्रों के प्रमाण नहीं दूँगा, क्योंकि अवैदिकों को उससे क्या मिलेगा? मैं यहाँ न कोई ऐतिहासिक प्रमाण ही दूँगा, क्योंकि आज पाश्चात्य शिक्षा के दास अथवा भारत विरोधी लोग व्यास, वायुदेव, इन्द्र, धर्मदेव आदि को व्यभिचारी कहने में क्यों संकोच करेंगे? दूसरी बात यह भी है कि इतिहास में जहाँ भी आपद्धर्म नियोग के प्रसंग हैं, वे अनेकत्र प्रक्षिप्त भी प्रतीत होते हैं। इस कारण मैं केवल साधारण तर्कों का प्रयोग कर रहा हूँ। पुनर्विवाह किसका हो व किसका नहीं, यह विषय भली प्रकार पहले सत्यार्थ प्रकाश में पढ़ लिया जाये। फिर नियोग कब व क्यों किया जाये, इसे उस वैचारिक परिपक्वता व उच्चत्व के स्तर तक पहुँच कर पढ़ा जाये, तब अनेक प्रश्नों का समाधान वहीं हो जायेगा। मैं सत्यार्थ प्रकाश के सभी तर्कों को यहाँ उद्धृत कर पिष्टपेषण करके लेख को व्यर्थ बढ़ाना नहीं चाहता। ऋषि तो व्यभिचार वा कुकर्म रोकने का उपाय लिखते हैं—

"इस व्यभिचार और कुकर्म के रोकने का एक यही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सकें, विवाह वा नियोग भी न करें, तो ठीक है। परन्तु जो ऐसे नहीं हैं, उनका विवाह और आपात्काल में नियोग अवश्य होना चाहिए।"

विधवा वा विधुर को उसी आपात् काल में नियोग की प्रेरणा करते हैं, जब उनको सन्तान की इच्छा हो अथवा जिस विधुर वा विधवा से ब्रह्मचारी न रहा जा सके और अगले पक्ष को सन्तान की इच्छा व अत्यावश्यकता होवे। यहाँ ऋषि ने सन्तान हेतु सबसे पहले तो किसी के बच्चों को गोद लेने की व्यवस्था दी है, नियोग तो सबसे अन्त की व्यवस्था है। इससे उनके काम का फल यह होगा कि सन्तान भी प्राप्त हो जायेगी, क्योंकि ऋषि बिना सन्तान की इच्छा के बीज को व्यर्थ फेंकना व्यभिचार व पाप मानते हैं। उनका मानना उसी प्रकार यथार्थ है, जिस प्रकार कोई किसान सुन्दर बीज को यूँ ही ऊसर में बिखेरने को ही किसान का धर्म मान ले। उसे फल एक भी प्राप्त न हो सके और न फल पाने की इच्छा ही करता हो। ऐसे किसान को महामूर्ख ही माना जायेगा। परन्तु जो बीज फेंकने में ही आनन्द मान रहे हों, उनको क्या समझाया जाये? वही दशा उनकी है, जो सम्पूर्ण जीवन भोग तो करना चाहते हैं,

परन्तु सन्तान होने से ऐसा डरते हैं, जैसे लोग भयंकर नाग को छूने से डरते हैं।

वैसे नियोग को व्यभिचार रोकने का साधन बताना तथा 'जिनसे ब्रह्मचारी न रहा जा सके उन्हें नियोग करने वाली बात' मेरी दृष्टि में सर्वथा अनुचित है, यह ऋषि के व्यक्तित्व से मेल नहीं खाता। यह वाक्य लेखकों की करतूत ही है, **ऐसा मेरा दृढ़ मत है।**

वस्तुतः नियोग अत्यन्त जितेन्द्रिय ऋषि कोटि के लोगों का ही आपद् धर्म है। आज ऋषि दयानन्द का उपहास वे करते हैं, जो नाना घृणित दुराचार वा देशद्रोह के आरोपों में कारागार में बन्द हैं वा रहे हैं। जो दूध में स्नान करके उस दूध की खीर बनाकर अपने अन्धभक्त महिलाओं वा पुरुषों को खिलाने जैसा घृणित कुकर्म भी करते हैं। ऐसे लोग ऋषि के विराट् व पावन व्यक्तित्व को क्या समझें? और उस मलिन अभक्ष्य खीर को खाने वाले उनके तामसी अंधभक्तों के वश की बात ही कहाँ है? जिनके आश्रमों में अश्लीलता की पराकाष्ठा का नग्न नृत्य होता हो, वे बोलें, तो इसे उनका घोर पाप ही माना जा सकता है, जिसका फल आज नहीं तो कल अवश्य भोगना पड़ेगा। वे

घोर पापों में लिप्त अप्राकृतिक होते हुए भी सर्वथा प्राकृतिक ईश्वरीय व्यवस्था के पालन को पाप मानते हैं। जो पति वा पत्नी अथवा जो शिष्य व शिष्याओं के साथ स्वयं सारे जीवन व्यभिचार में रत हैं, वे स्वयं को संस्कारवान् गृहस्थ मानते हैं और ऋषियों को पापी ठहराते हैं।

यदि कोई कहे कि क्या आज कोई ऋषिभक्त कहाने वाला अपनी पत्नी, पुत्री वा भगिनी का किसी से आपत्तिकाल में भी नियोग कराना चाहेगा अथवा क्या कोई माई का लाल अपनी बड़ी भाभी वा छोटी भाभी से आपत्तिकाल में नियोग करेगा? इस पर मेरा कहना कि नहीं करेगा और यदि ऐसा करेगा, तो वह निश्चित ही महापापी व दुष्ट कहलायेगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि वर्तमान देश-काल-परिस्थिति में ऐसा ही कहना उपयुक्त होगा। तब कोई कहेगा कि फिर मैं ऋषिप्रोक्त वा वेदोक्त नियोग व्यवस्था की वकालत क्यों कर रहा हूँ? मैं भी कुछ आर्यों की भाँति दबी जुबान से इसे सत्यार्थ प्रकाश, वेद वा भारतीय इतिहास का एक कलंक क्यों न मान लूँ? नहीं, मैं ऐसा कदापि नहीं कर सकता, परन्तु मैं वर्तमान में इस परम्परा को उचित भी कदापि नहीं मान सकता। हाँ, ऋषि कोटि के महापुरुषों के समाज में सिद्धान्ततः नियोग श्रेष्ठ आपद् धर्म है।

कोई पूछे कि आज इस धर्म को अधर्म बताते हुए वर्तमान में ऐसा करने को पाप क्यों बतला रहे हो? इसका कारण मैं बतलाना चाहूँगा।

सर्वप्रथम यह जान लेना चाहिए कि कुछ व्यवस्थाएँ देश-काल-परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित भी हो जाया करती हैं, भले ही वे कितनी भी श्रेष्ठ व हितकारिणी क्यों न हों? जो कार्य हेमन्त ॠतु में करणीय हो सकता है, वही कार्य ग्रीष्म ॠतु में अकरणीय होगा। कोई कार्य ध्रुव प्रदेश में करणीय, वही कार्य भूमध्यरेखीय उष्ण प्रदेशों में हानिकर हो सकता है। कोई कार्य बच्चे के लिए करणीय, वही युवकों व वृद्धों के लिए अकरणीय हो सकता है। मैं इसके उदाहरण देना आवश्यक नहीं मानता, क्योंकि यह प्रायः सभी प्रबुद्ध पाठक स्वयं जान सकते हैं।

प्राचीन काल में नदी के तीर पर, वन में, पर्वत पर संध्या करने, वनभ्रमण व निवास को वानप्रस्थ व संन्यासी का धर्म बताया जाता था, परन्तु आज वन हैं ही नहीं और कहीं हैं, तो उन अधिकांश वनों में कंटीली झाड़ियाँ, जलविहीनता वा दूषित जल की ही विद्यमानता, मच्छर आदि का घोर प्रकोप, कन्द-

मूल फलों का प्रायः अभाव, कहीं भाव है, तो वन विभाग का पहरा। ऐसे में 'गंगातीरे हिमगिरिशिला...' को व्यवहार में लाना कोई सहज कार्य नहीं है और न यह आवश्यक ही है, तब हमें इसके ऐसे विकल्प खोजने पड़ेंगे, जहाँ साधना में विघ्न भी न हो और वन जैसी शान्ति, सरलता व प्राकृतिक जीवन घरों या आश्रमों में ही उपलब्ध हो जाये। जिस काल में यह सब लिखा गया, उस काल में प्राकृतिक वातावरण, सामाजिक व्यवस्था एवं राजधर्म भी तदनुकूल ही था। राम राज्य में मच्छर, सर्प, प्राकृतिक आपदा आदि का भी भय नहीं था, तब कहीं भी बैठकर निर्विघ्न साधना की जा सकती थी। आज तो बन्द घर में भी बैठकर मच्छरदानी व पंखा चाहिए, तब घोर जंगल में साधना कैसे होगी? इसलिए हमें पुराकाल की कुछ उत्तमोत्तम व्यवस्थाओं को तत्काल में पूर्ण हितकारिणी मानते हुए भी वर्तमान प्रतिकूल काल में उसे उचित नहीं मानना चाहिए।

जब भारत में आपात्कालीन नियोग प्रथा प्रचलित थी, उस समय के लोग उपरिवर्णित संयमित सुव्यवस्थाओं में रहने वाले ऋषि कोटि के महापुरुष होते थे। वे कामशक्ति सम्पन्न होते हुए भी कामुक नहीं होते थे। स्त्री-पुरुष परस्पर संयोग मात्र संतानोत्पत्ति हेतु ही करते थे, चाहे वह नियोग हो वा विवाह।

जब प्रयोजन सिद्ध हो जाता था, तो शारीरिक सम्बन्ध की कोई अभिलाषा भी उनमें नहीं होती थी। तब वे निश्चित ही नियोग करने वा कराने के अधिकारी थे, परन्तु आज जब मानव ने कामुकता में संसार के सभी गिरे से गिरे प्राणियों को भी पीछे छोड़ दिया है, जो व्यर्थ वीर्यादि बहाने में ही आनन्द मानते हैं और जिस लिए बीज का प्रयोग होना चाहिए, उससे भय खाते हैं। जहाँ स्वयं माता सर्पिणी बनकर बनकर अपने ही भ्रूण को खा जाती है अर्थात् गर्भपात कर पापिनी बन जाती है, तो कोई परिवार नियोजन के नाम पर स्वेच्छाचारी होकर भोग लिप्सा में प्रतिदिन रत रहते हैं, वे भला नियोग पर अंगुली उठाने के अधिकारी कहाँ रहे और न वे नियोग करने–कराने के अधिकारी ही हैं।

आश्चर्य यह है कि जो लोग सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका से लेकर तीसरे समुल्लास तथा आधे चौथे समुल्लास की महर्षि की प्रोज्ज्वल मान्यताओं को शतांश में भी जीवन में उतारने की योग्यता नहीं रखते, वे सीधे नियोग प्रथा को लेकर शोर मचाते हैं। अरे! पहिले यह तो पढ़ लो कि ऋषि जितेन्द्रियता को कितना महत्त्वपूर्ण मानते हैं? वे विवाहितों को भी कैसा बनने का परामर्श देते हैं? यदि ऋषि की बातों को मानो, तो गृहस्थ

बनना भी असम्भव हो जायेगा, तब नियोग कौन कर वा करवा सकेगा? इस बात को कौन नकार सकता है कि ऋषि के द्वारा अनुमोदित गृहस्थ के लिए कोई विरला ही खरा उतर सकता है। नियोग की योग्यता तो इससे भी बढ़कर है। तब कहाँ नियोग पर चर्चा करने चले हो। अच्छा तो यही है कि पहले अपने अन्दर झाँककर देखें, फिर कीचड़ उछालें।

भला जो व्यक्ति शरीर शास्त्र का क, ख, ग भी नहीं जानता, उसे एक योग्य सर्जन द्वारा की जाने वाली चीर-फाड़ पर शोर मचाने का क्या अधिकार है? अरे! पहले सर्जरी का प्रारम्भिक ज्ञान तो कर लो, उसके बाद सोचना कि सर्जन द्वारा की जाने वाली चीर-फाड़ हिंसा नहीं, बल्कि सच्ची अहिंसा है। इसी प्रकार जो अति जितेन्द्रिय योगी पुरुष वा स्त्री हैं, वे ही नियोग करने-कराने की योग्यता रखते हैं और वे ही इस विषय पर विशेष चिन्तन कर सकते हैं। सिद्धान्ततः विचार तो हर प्रबुद्ध व निष्पक्ष व्यक्ति कर सकता है, जो भले ही पूर्ण जितेन्द्रिय न हो, परन्तु इन्द्रियासक्ति को पाप तो मानता हो। इन्द्रियासक्ति को स्वाभाविक मानने वाले के मस्तिष्क में यह बात सात जन्म तक भी नहीं समा सकती कि बहुत आपत्ति काल में तो नियोग अच्छा है और बुरा तो उसे इस कारण कहा

जा रहा है, क्योंकि समाज आज बुरा कहता है। वह धृष्ट व्यक्ति नियोग की आलोचना करके स्वयं को पवित्र दिखाना चाहता है। इस समाज में क्या-क्या पाप खुले वा छुपे रूप में हो रहे हैं, उधर न समाज ध्यान देता है और न आरोप लगाने वाले।

आज नियोग ही नहीं, अपितु कई ऐसी वैदिक व्यवस्थाएँ हैं, जो किसी भी निष्पक्ष सत्यमार्गी व्यक्ति को उचित प्रतीत होंगी, परन्तु उन्हें करना सम्भव नहीं है। जैसे वेद ने कहा कि यदि कोई हमारी गाय, घोड़ा वा मनुष्य को मारेगा, तो उसे सीसे से मार देना चाहिए। यद्यपि यह आदेश पूर्णतः उचित व हितकारी है, परन्तु आज की सामाजिक व राजव्यवस्था इसे करने नहीं देगी। हजारों निर्दोष प्राणियों के हत्यारे को मारने वालों को दण्ड देने वाला वीर पुरुष भी उसी प्रकार जेल में बन्द कर दिया जायेगा, जिस प्रकार कोई अन्य हत्यारा बन्द किया जा सकता है। तब यह कैसा अन्धा कानून है? इस अन्धे कानून के रहते आज वेद का उचित व उत्तम आदेश कैसा व्यर्थ हो गया है? तब क्या दोष वेदादेश को दिया जाये? उस उत्तम व्यवस्था को दोष दिया जाये वा आज के पापपूर्ण तथाकथित समानता के व्यवहार का दम्भ करने वाली कानून व्यवस्था को

दोष दिया जाये ? यह पाठक स्वयं सोचें।

यदि यह व्यवस्था लागू करने भी दी जाये, तो परस्पर खून ही बहने लगेंगे। जिसमें ताकत होगी, वह अवसर पाकर कमजोर को मारता ही रहेगा। आज पापी को गोली मारने का स्तर रखने वाले भी तो विरले ही हैं। वैदिक आर्ष व्यवस्था यह भी है कि जो धनी दान नहीं करता और जो गरीब तप नहीं करता, उन दोनों को मार डालना चाहिए। (विदुर नीति) आज यह व्यवस्था लागू हो, तो भी भयंकर रक्तपात हो जाये, क्योंकि आज तो दान माँगने वाले अर्थचोरों का भी एक जाल बिछा हुआ है, जो बलपूर्वक दान माँगेगा और न देने पर विदुर जी का प्रमाण देकर अदाता को मार डालेगा। उसी प्रकार भूखे-नंगे शोषितों को रक्तशोषक धनी व्यक्ति तप करने का उपदेश करेगा, अन्यथा मार डालने को तत्पर रहेगा। इस कारण यह व्यवस्था भी वर्तमान में उचित नहीं है, क्योंकि न तो आज निर्धन लोग तपस्वी रहे और न धनी लोग परोपकारी रहे।

इसलिए आज वैदिककालीन उत्तमोत्तम, परन्तु इस प्रकार की तीक्ष्ण वा आपद्धर्म की व्यवस्थाओं को सहसा अपनाने की नहीं, बल्कि सम्पूर्ण वातावरण को ही वेदानुकूल बनाने की

आवश्यकता है। उसके पश्चात् ही उन व्यवस्थाओं को लागू किया जा सकता है, अन्यथा योग्य व्यक्ति को भी नियोग का अधिकार नहीं होना चाहिए, क्योंकि यद्यपि वह उचित कर रहा है, पुनरपि अनधिकारी लोग उसके स्तर को न जानकर स्वयं सन्तान हेतु नहीं, बल्कि व्यभिचार में प्रवृत्त हो सकते हैं, जिससे सामाजिक ढाँचा चरमरा सकता है। हाँ, यदि कभी वैदिक साम्राज्य वा समाज स्थापित हो जाये, तो पुनः वे सारे नियम सहजता से लागू हो सकते हैं। परन्तु इतना भी स्मरण रहे कि तब भी नियोग सामान्य धर्म न होकर आपद्धर्म ही रहेगा, जबकि विवाह सामान्य धर्म ही रहेगा।

हाँ, यह बात उल्लेखनीय है कि सत्यार्थ प्रकाश में देवर का अर्थ बड़ा वा छोटा भाई लिखा है और उसे अपनी भाभी के साथ नियोग का अधिकारी बताया है, इसे मैं अनुचित मानता हूँ। मेरी दृष्टि में यह ऋषि दयानन्द के लेखकों का निकृष्ट काम है, जो ऋषि की दृष्टि में नहीं आया। जिस वैदिक पावनी संस्कृति में बड़ी भाभी माता के समान तथा छोटी भाभी पुत्री के समान मानी गयी है, वहाँ देवर अर्थात् नियुक्त पति का अर्थ पति का भाई मानना अनुचित है। उस कुल वा उससे उच्च कुल का दूरस्थ सम्बन्धी नियुक्त पति हो सकता है, परन्तु यह

व्यवस्था भी महान् योगिजनों के लिए है, यह भी सुसन्तान की उत्कट कामना के होने पर ही। जहाँ तक दस व्यक्तियों के साथ नियोग की बात है, वह भी दस सन्तान की इच्छा पर। इसका कारण यह है कि एक ही पुरुष वा स्त्री के साथ लगातार नियोग होगा, तो परस्पर आकर्षण दृढ़ होने की प्रबल आशंका हो सकती है। इस कारण पृथक्–पृथक् व्यक्तियों के साथ नियोग का विधान हो सकता है। यह बात मनुस्मृति के उस कथन से मेल खाती है कि अधिकतम दस सन्तान ही होनी चाहिए। उस समय जनसंख्या अत्यन्त न्यून होने से ऐसा कहा गया है, **वर्तमान में यह उचित नहीं।** यह तो अधिकतम सीमा है।

इसके साथ ही मैं यही कहूँगा कि वर्तमान देश, काल व परिस्थिति में न तो कोई नियोग का समर्थन करने का अधिकारी है और न नियोग का विरोध करने का ही अधिकारी। जो व्यक्ति भगवान् मनु के अनुसार गृहस्थ की वैदिक योग्यता प्राप्त कर ले, तभी इस विषय पर बोलना उचित है। वर्तमान में तो यही उचित है कि जो व्यक्ति नियोग के पक्ष में तर्क देते हैं, उन्हें यही कहना चाहिए कि ऋषि दयानन्द ने अपने स्तर के अखण्ड ब्रह्मचारी से गृहस्थ बने महान् योगी पुरुष वा स्त्री को

ही आपत्तिकाल में तथा सन्तान की अत्यावश्यकता अनुभव होने पर ही नियोग करने का अधिकार दिया है। यह सामान्य लोगों के लिए सामान्य व्यवस्था कदापि नहीं है। यही ऋषि दयानन्द के कथन का अभिप्राय है। उधर जो इस व्यवस्था का विरोध करते हैं, उन्हें कहना चाहिए कि ऋषि दयानन्द ने जो व्यवस्था प्राचीन वैदिककालीन महान् लोगों के अनुकरण पर दी है, वह वर्तमान में किसी के लिए भी किञ्चित् भी उचित नहीं है। इसलिए इस विषय पर वर्तमान में चर्चा ही अनावश्यक है। मुझे यह भी प्रतीत होता है कि ऋषि दयानन्द के समय वर्तमान की अपेक्षा उन लोगों का चरित्र उत्तम था, परन्तु भगवान् मनु की योग्यता वाला व्यक्ति तो उस काल में भी दुर्लभ था। ऐसी स्थिति में नियोग विषय पर इतना बल देने का औचित्य भी कम प्रतीत होता है।

प्रतीत होता है कि यह भी ऋषि दयानन्द के लेखकों का काम है, जिसे आर्य समाज की उस पीढ़ी के पुरुषों ने समझ लिया था और नियोग की व्यवस्था के स्थान पर पुनर्विवाह की व्यवस्था लागू की गयी। मुझे लगता है कि यही देश, काल के अनुकूल था। हाँ, आजकल अनेक पतित लोग भी सोशल मीडिया पर नियोग को लेकर ऋषि दयानन्द व आर्य समाज पर

आक्रमण कर रहे हैं, वे उसी प्रकार उपहास के पात्र हैं, जैसे कोई वेश्या किसी सदाचारी जितेन्द्रिय व्यक्ति को ब्रह्मचर्य पर प्रवचन करके उपहास का पात्र बन रही हो।

अब हम दूसरे वर्ग के निन्दकों के मनोरोग की चिकित्सा करते हैं। वैसे दोनों ही प्रकार के निन्दकों को सम्पूर्ण लेख ध्यान से पढ़कर अपने मनोमालिन्य को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

दूसरे वर्ग के निन्दक वे हैं, जो वेद से अनभिज्ञ, परन्तु वेद व ऋषियों का झण्डा उठाए बड़े-बड़े तथाकथित धर्मगुरु एवं उनके अन्धभक्त अथवा पालतू तोते आये दिन सोशल मीडिया में कुछ न कुछ बोलते रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों की कुछ विदेशी शक्तियों से साँठ-गाँठ है। वे लोग वेद व ऋषियों को सम्मान देते, परन्तु उनके यथार्थ स्वरूप से अनभिज्ञ हैं तथा प्रतिमापूजन व अवतारवाद से चलने वाली अपनी आजीविका पर संकट समझकर ऋषि दयानन्द एवं आर्य समाज की निन्दा करने में ही सनातन धर्म की विजय मानते हैं। वे ऋषि दयानन्द एवं आर्य समाज के उपकारों को भूलकर सदैव इन्हें अपना शत्रु मानकर अवसर पाते ही इनकी मिथ्या

निन्दा करते हैं। ऐसे निन्दक अपने शास्त्रों को भी ध्यान से नहीं पढ़ते। ऐसे महानुभाव पहले वर्ग के निन्दक लोगों के लिए लिखे अब तक लिखे भाग को ध्यानपूर्वक पूरा पढ़ लें, तदुपरान्त अपने भ्रम निवारण हेतु निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दें—

विचार करें कि कहीं आप स्वयं उपहास के पात्र बनने के साथ–साथ अपने महान् पूर्वजों को भी निन्दा का पात्र तो नहीं बना रहे हैं? जो बात आपके भी मान्य ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण एवं महाभारत कह रहे हैं, वही बात यदि ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिख दी, तब उसकी निन्दा करना क्या आपको उपहास का पात्र नहीं बनाता?

आइए हम नियोग के पोषक कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

निम्नलिखित मन्त्र ऋषि दयानन्द द्वारा नियोग के समर्थन में उद्धृत किया गया है—

"उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्ताग्रभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि संबभूव।

(ऋ०१०.१८.८)

(नारि) विधवे तू (एतं गतासुम्) इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (शेष) बाकी पुरुषों में से (अभिजीवलोकम्) जीते हुए दूसरे पति को (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्य दिधिषोः) तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिए नियोग होगा तो (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पति का होगा और तू अपने लिए नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा। ऐसे निश्चययुक्त (अभि सम् बभूव) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे।''[२]

जो इस अर्थ पर ये द्वेषी लोग ऋषि का उपहास करते हैं, वे **आचार्य सायण के भाष्य** को भी ध्यान से पढ़ें—

''हे नारि मृतस्य पत्नि जीवलोकं जीवानां पुत्र पौत्रादीनां लोकं स्थानं गृहमभिलक्ष्योदीर्ष्व। अस्मात्स्थानादुतिष्ठ॥ ईर गतौ आदादिकः। गतासुमपक्रांतप्राणमेतं पतिमुप शेषे। तस्य समीपे

[2] सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास

स्वपिषि। तस्मात्त्वमेहि। आगच्छ यस्मात्त्वं हस्तग्राभस्य पाणिग्राहं कुर्वतो दिधिषोर्गर्भस्य निधातुस्तवास्य पत्युः संबंधागतभिदं जनित्वं जायात्वमभिलक्ष्य सं बभूथ संभूतासि अनुमरणनिश्चयमकार्षीः तस्मादागच्छ।''

सायणाचार्य ने इस मन्त्र के ऊपर एक आर्षवचन उद्धृत किया है—

''देवरादिकः प्रेतपत्नीमुदीर्ष्व नारीत्यनया भर्तृसकाशादुत्थापयेत्। सूचितं च। तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽंतेवासी जरद्दासो वोदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं (आ०गृ० ४.२.१८)''

कोई ऋषि दयानन्द विरोधी सायणभक्त बताये कि इन दोनों भाष्यों में क्या भेद है? क्या दोनों का अर्थ समान नहीं है? ऐसी स्थिति में ऋषि दयानन्द की निन्दा क्या मूर्खता भरे पक्षपात की पराकाष्ठा अर्थात् पाप नहीं है? ऋषि का उपहास करने वाले पहले अपने आचार्य सायण को तो पढ़ लेते, परन्तु यह कार्य कोई बुद्धि वाला ही तो करेगा, निर्बुद्धि क्या करेगा? स्पष्ट ही यहाँ सायण भाष्य भी वही कहता है, जो ऋषि दयानन्द कहता है। कुछ तो ऋषि–द्रोही ऐसे अनपढ़ हैं कि

उन्हें सायण भाष्य समझ ही नहीं आयेगा, फिर भी वे केवल कुछ शब्द देखकर अनुमान तो लगा ही सकते हैं।

नियोग के पक्ष में सत्यार्थप्रकाश में एक मन्त्र—

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वम् करतः कुहोषतुः। को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्य्यं न योषा कृणुते सधस्व आ॥ (ऋ० १०.४०.२)

इस मन्त्र का जो नियोगपरक अर्थ ऋषि दयानन्द ने किया है, वैसा ही अर्थ आचार्य सायण ने अपने वेदभाष्य तथा महर्षि यास्क ने निरुक्त भाष्य तथा निरुक्त की स्कन्दस्वामिमहेश्वर टीका में भी किया गया है। ऐसी स्थिति में इन ग्रन्थों को प्रमाण मानने वाले पौराणिकों द्वारा ऋषि दयानन्द एवं आर्य समाज की निन्दा करना क्या उनकी मानसिक व बौद्धिक विकृति को नहीं दर्शाता है?

वैसे यह और स्पष्ट कर दूँ कि किसी भी वेदमन्त्र का स्वाभाविक व मूल भाष्य तो आधिदैविक ही होता है, आधि-भौतिक भाष्य तो भाष्यकार की योग्यता व देश, काल व परिस्थिति के अनुसार मानव व्यवहार सीखने के लिए होता है।

इस मन्त्र का 'वेदार्थ-विज्ञानम्' ३.१५ में मेरा आधिदैविक (वैज्ञानिक) तथा आधिभौतिक भाष्य इस प्रकार है—

आधिदैविक भाष्य—

(अश्विनौ) विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित लोक वा कण (कुह, स्वित्, दोषा) 'क्व स्विद्रात्रौ भवथः' [दोषा = रात्रिनाम (निघं.१.७)। कः = प्रजापतिर्वै कः (तै.सं.१.६.८.५; मै.सं.१.१०.१०; श.ब्रा.६.४.३.४; जै.उ.३.२.१०; तै.ब्रा.२.२.५.५; जै.ब्रा.१.२९०, २.२३१; ऐ.ब्रा.२.३८; ६.२१; तां.ब्रा.७.८.३; गो.उ.१.२२; कौ.ब्रा.५.४, २४.४;), प्राणो वाव कः (जै.उ.४.२३.४)] महाप्रलयरूपी रात्रि में कहाँ रहते हैं अर्थात् वे नष्ट होकर अपने कारणभूत पदार्थ में परिवर्तित हो जाते हैं। हमारे मत में यहाँ 'कः' को 'किम्' एवं उससे बना 'कुह' शब्द छान्दस प्रयोग है, इस कारण यहाँ इस प्रश्न का उत्तर भी छुपा हुआ है कि महाप्रलय काल में प्रकाशित और अप्रकाशित लोक वा कण प्रजापति रूप परमात्मा एवं प्रकृति में लीन हो जाते हैं अथवा वास करते हैं। (कुह, वस्तोः) 'क्व दिवा' ब्राह्मदिन अर्थात् सृष्टिकाल में वे दोनों प्रकाशित एवं अप्रकाशित लोक वा कण कहाँ रहते हैं? इसके उत्तर में इन्हीं शब्दों के द्वारा बताया कि ये दोनों प्रकार के पदार्थ प्राण तत्त्व में वास करते

हैं, परन्तु प्राण तत्त्व स्वयं प्रकृति और ईश्वर में ही वास करते हैं। ध्यान रहे कि सृष्टिकाल में भी मूल पदार्थ प्रकृति का अस्तित्व बना रहता है अर्थात् वह सम्पूर्ण रूप से सृष्टि में परिवर्तित नहीं होता।

(कुह, अभिपित्वम्, करतः) 'क्वाभिप्राप्तिं कुरुथः' अर्थात् सृष्टिकाल में ये दोनों पदार्थ किन पदार्थों को सब ओर से प्राप्त करते हैं? इस प्रश्न के साथ ही उत्तर देते हुए कहा कि ये दोनों पदार्थ सृष्टिकाल में विभिन्न प्राण रश्मियों को ही सब ओर से प्राप्त करते हैं।

(कुह, ऊषतुः) 'क्व वसथः' ये दोनों पदार्थ सृष्टिकाल में कहाँ बसते हैं? इसके साथ ही लिखा कि ये दोनों पदार्थ सृष्टिकाल में परमात्मा एवं प्रकृति के साथ–२ प्राण एवं मनस्तत्त्व में बसते हैं और इन्हीं के द्वारा आच्छादित रहते हैं। (कः, वाम्, शयुत्रा, विधवेव, देवरम्) 'को वां शयने विधवेव देवरम् देवरः कस्मात् द्वितीयो वर उच्यते विधवा विधातृका भवति विधवनाद्वा विधा–वनाद्वेति चर्मशिराः अपि वा धव इति मनुष्यनाम तद्वियोगाद्विधवा देवरो दीव्यतिकर्मा' उन दोनों का शयन स्थान क्या है? अर्थात् वे दोनों कहाँ मिलते हैं? इसका उत्तर भी इसी में निहित है कि प्रकाशित व अप्रकाशित कण प्राण तत्त्व में ही मिलते हैं। [कः

= सुखं वै कम् (गो.उ.६.३), अन्नं वै कम् (मै.सं.३.३.६, ऐ.ब्रा.६.२१, गो.उ. ६.३)] इसके साथ ही ये दोनों एक–दूसरे की बल रश्मि रूपी इन्द्रियों को परस्पर उत्तमता से धारण व पुष्ट करने वा एक–दूसरे को अवशोषित करने हेतु मिलते हैं।

[वरम् = वरो वरयितव्यो भवति (निरु.१.७), वर इव वै स्वर्गो लोकः (जै.ब्रा.२.९९), स्वर्गो वै लोको यज्ञः (कौ.ब्रा.१४.१)] यह मिलन कब होता है, यह बतलाते हुए कहते हैं कि विधवा अर्थात् जब कोई कण अपने धारक व पोषक लोक से उत्सर्जित होकर अन्तरिक्ष में कम्पन करता हुआ विविध प्रकारेण गमन करता है, उस समय वह देवर अर्थात् किसी अन्य कण के साथ शयन करता है अर्थात् संयुक्त हो जाता है। उससे संयुक्त होकर उसकी गति अपेक्षाकृत सरल व अविक्षुब्ध हो जाती है। विधवा पद का यह निर्वचन आचार्य चर्मशिरा ने किया है, जिसे ग्रन्थकार ने उद्धृत किया है।

इसी प्रकार की क्रिया तब भी होती है, जब इस ग्रन्थ के खण्ड ३.७ में वर्णित धवाः संज्ञक कण अपने साथ संयुक्त किसी अन्य कण से वियुक्त होकर यत्र–तत्र कम्पन करते हुए भटकने लगते हैं और उस समय चमकने वाले देवर अर्थात् कुछ प्रकाशित कण, तरंगाणु आदि उनसे संयुक्त हो जाते हैं।

(मर्यम्, न, योषा, आकृणुते, सधस्थे) 'मर्यो मनुष्यो मरणधर्मा योषा यौतेः आकुरुते सहस्थाने' इसी प्रकार की संयोग प्रक्रिया तब होती है, जब अल्पायु वाले मनुष्य नामक कण, जिनकी व्याख्या खण्ड ३.७ में की गयी है, किसी स्त्री संज्ञक संयोज्य कण के साथ संयोग करते हैं और उस समय स्त्री संज्ञक संयोज्य पदार्थ उन अल्पायु कणों को अपने साथ धारण कर लेते हैं और उनको एक नवीन पदार्थ में परिवर्तित कर देते हैं।

ऋषि दयानन्द का विरोध करने वाले मेरे आधिदैविक अर्थ को पढ़कर स्वयं विचारें कि उनकी समझ में कितना आया है? एक तथाकथित सन्त, जो हर समय वेदभाष्य ही दिखाते रहते हैं, उनकी समझ में तो शायद कुछ भी न आवे।

अब हम इस मन्त्र के आधिभौतिक अर्थ पर विचार करते हैं, जहाँ उपमा आदि अलंकारों का पूर्ण महत्त्व है—

आधिभौतिक भाष्य—

(अश्विनौ) हे राजन् व राजपुरुषो! आप दोनों (कुह, स्वित्, दोषा) दुःखरूप रात्रि में कहाँ (कुह, वस्तोः) सुखरूप दिनों में कहाँ (कुह, अभिपित्वम्, करतः) एक–दूसरे को कहाँ प्राप्त करते हो अर्थात् प्रजा कल्याणार्थ कहाँ मिलते हो? कहाँ व

कैसे प्रजा के सुख सम्पादनार्थ संसाधन प्राप्त करते हो? (कुह, ऊषतुः) आप दोनों कहाँ रहते हो अर्थात् सुरक्षा व जनसामान्य की समस्याओं के समाधानार्थ आप दोनों कहाँ रहते हो? (कः, वाम्, शयुत्रा) आप दोनों का शयन वा विश्राम–स्थल कहाँ है? (विधवा, इव, देवरम्) आप दोनों प्रजाहित की कामना एवं उसी लक्ष्य को लेकर राजसभा में परस्पर उसी प्रकार मिलते हो, जैसे कोई विधवा स्त्री मात्र सन्तान प्राप्ति की इच्छा से ही अपने नियुक्त पति से मिलती है और इसके अतिरिक्त मात्र विषयासक्ति हेतु कभी नहीं मिलती और (मर्यम्, न, योषा, आकृणुते, सधस्थे) जिस प्रकार मात्र सन्तान की ही कामना करती हुई कोई पत्नी अपने पति को अपने स्थान पर बुलाती है, इसके अतिरिक्त पति व पत्नी का भी कोई शारीरिक सम्बन्ध कभी नहीं होता वा नहीं होना चाहिए।

भावार्थ— राजा व राजपुरुष (मन्त्री आदि) सदैव सुरक्षित स्थानों पर ही रहें। सुख व दुःख दोनों ही परिस्थितियों में एक–मात्र प्रजा का कल्याण ही उनका लक्ष्य होना चाहिए। उन दोनों का परस्पर सम्बन्ध मात्र प्रजा कल्याण की कामना के लिए ही होना चाहिए, अन्यत्र वे स्वतन्त्र रहें अर्थात् अपने व्यक्तिगत हितों में वे स्वतन्त्र रहें और प्रजाहित में वे परस्पर एक–दूसरे

से बँधे रहें। यहाँ उपमा के द्वारा समझाया है कि जिस प्रकार कोई विधवा अपने नियुक्त पति से अथवा कोई पत्नी अपने पति से केवल सन्तानोत्पत्ति की कामना से ही मिलती है, मात्र विषयसुख हेतु नहीं। उसी प्रकार राजा एवं अमात्यों को व्यक्तिगत हितों में स्वतन्त्र व प्रजाहित में सभा आयोजित करके उचित विचार–विमर्श करते रहना चाहिए। यहाँ बार–२ 'कहाँ' प्रश्नवाचक पद का प्रयोजन यही है कि राजा और राजपुरुषों को अपना वास बहुत सावधानी से चुनना चाहिए, जिससे वे आपात्काल में कभी भी अपने व प्रजा के रक्षण व पालन हेतु तत्काल मिलकर निर्णय कर सकें। इसके साथ ही सुख व दुःख दोनों में उनकी नीतियाँ सदैव प्रजाहित का रक्षण करने वाली ही होनी चाहिए।

अब हम महाभारत के प्रसंग पर विचार करते हैं। इस विषय में हम गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित महाभारत के श्लोक और उन्हीं के द्वारा किए गये हिन्दी अनुवाद को यहाँ उद्धृत कर रहे हैं, जिससे कोई मुझ पर मनमाना अर्थ करने का आरोप न लगा सके।

''सम्बभूव तया सार्धं मातुः प्रियचिकीर्षया।

भयात् काशिसुता तं तु नाशक्नोदभिवीक्षितुम्॥ ६ ॥

(महाभारत, आदिपर्वणि, सम्भवपर्व, अध्याय १०५)

माता का प्रिय करने की इच्छा से व्यास जी ने उसके साथ समागम किया, परन्तु काशिराज की कन्या भय के मारे उनकी ओर अच्छी तरह देख नहीं सकी।''

इसके अगले श्लोकों में लिखा है कि अम्बिका के नेत्र बन्द करने से धृतराष्ट्र अन्धा उत्पन्न हुआ, इसी प्रकार पाण्डु के पाण्डुवर्ण का उत्पन्न होने की चर्चा है। अन्त में दासी के साथ नियोग विषय में महाभारत में कहा है—

''**कामोपभोगेन रहस्तस्यां तुष्टिमगादृषिः॥ २६ ॥**

एकान्त में मिलकर उस पर महर्षि व्यास बहुत सन्तुष्ट हुए।''

यहाँ 'काम' एवं 'रहस्' शब्द अर्थ को स्पष्ट कर रहे हैं। उधर 'धर्म' नामक देव द्वारा देवी कुन्ती के गर्भ से धर्मराज युधिष्ठिर के जन्म के प्रसंग में कुन्ती व धर्म के नियोग का वर्णन इस प्रकार है—

''**संयुक्ता सा हि धर्मेण योगमूर्तिधरेण ह।**

लेभे पुत्रं वरारोहा सर्वप्राणभृतां हितम्॥ ५ ॥''

(महा. आदिपर्वणि, सम्भवपर्व, अध्याय १२२)

यहाँ 'योगमूर्तिधरेण' शब्द विचारणीय है। गीता प्रेस संस्करण में इसका अनुवाद इस प्रकार है—

''तदनन्तर योगमूर्तिधारण किये हुए धर्म के साथ समागम करके सुन्दराङ्गी कुन्ती ने एक ऐसा पुत्र प्राप्त किया, जो समस्त प्राणियों का हित करने वाला था।''

इसी पर्व के १०४ वें अध्याय में गीता प्रेस ने पाद टिप्पणी के रूप में मनुस्मृति के कुछ श्लोक उद्धृत कर रखे हैं—

''विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि।
एकमुत्पादयेत् पुत्रं न द्वितीयं कथंचन॥ (मनु.९.६१)

विधवा स्त्री के साथ सहवास के लिए (पतिपक्ष के गुरुजनों द्वारा) नियुक्त पुरुष अपने सारे शरीर पर घी चुपड़ कर (सौन्दर्य बिगाड़कर) वाणी को संयम में रखकर (चुपचाप रहकर) रात्रि में सहवास करे। इस प्रकार वह एक ही पुत्र उत्पन्न करे, दूसरा कभी न करे।

विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम्॥ (मनु.९.६३)

विधवा में नियोग के लिए विधि के अनुसार (अर्थात् कामवश न होकर कर्त्तव्यबुद्धि से) चित्त को संयमित और इन्द्रियों को अनासक्त रखते हुए नियोग का प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर दोनों परस्पर पिता और पुत्रवधू के समान बर्ताव करें (अर्थात् स्त्री उसको पिता के समान समझकर बरते और पुरुष उसे पुत्रवधू मानकर बर्ताव करे।)

कलियुग में मनुष्यों के असंयमी और कामी होने के कारण नियोग वर्जित है।''

उधर वाल्मीकीय रामायण में ब्रह्मा जी द्वारा देवों को दिए आदेश का वर्णन है—

''अप्सरस्सु च मुख्यासु गन्धर्वीणां तनूषु च।
यक्षपन्नगकन्यासु, ऋक्षविद्याधरीषु च॥ ५ ॥

किन्नरीणां च गात्रेषु वानरीणां तनूषु च।
सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रांस्तुल्यपराक्रमान्॥ ६ ॥

प्रधान–प्रधान अप्सराओं, गन्धर्वों की स्त्रियों, यक्ष और नागों की कन्याओं, रीछों की स्त्रियों, विद्याधारियों, किन्नरियों तथा वानरियों के गर्भ से वानर रूप में अपने ही तुल्य पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करो। ५—६ ॥''

(गीताप्रेस, वा०रा०, बालकाण्ड १७ सर्ग)

यहाँ सभी वर्गों की स्त्रियों के गर्भ से वानर वर्ग के लोग कैसे उत्पन्न हो गए? यह भी तो नियोग ही है। हनुमान् जी के पिता केसरी नामक वानरवंशी क्षत्रिय थे। क्या वे सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ थे? क्या सभी वानरवंशी नपुंसक हो गए, जो देवों को उनकी स्त्रियों के साथ नियोग करना पड़ा?

वस्तुतः श्रीराम को विष्णु का अवतार सिद्ध करने के प्रयास में सम्पूर्ण प्रसंग मिलाया गया है। कुछ अविवेकी एवं धूर्त लोग आर्य समाज द्वारा विभिन्न आर्ष ग्रन्थों में से कुछ बातें स्वीकार करने एवं कुछ बातों को प्रक्षेप मानकर त्यागने पर उपहास करते हैं, वे वास्तव में शास्त्रों की मर्य्यादा व कार्य को नहीं समझते। आज उन्हीं के कारण प्रायः सभी आर्ष ग्रन्थों पर विधर्मी वा वामपन्थी मनमाने दोषारोपण कर रहे हैं। वे हमारी सन्तति को मुस्लिम, ईसाई वा वामपन्थी बना रहे हैं। इन

पौराणिक बन्धुओं को न तो इस पर लज्जा आती है और न इन्हें हिन्दुओं व सनातन धर्म के भविष्य की कोई चिन्ता है। वे इतनी भी बुद्धि नहीं रखते कि रामायण का आधार देवर्षि नारद एवं महर्षि वाल्मीकि का संवाद है। यद्यपि उसमें भी कुछ श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं, पुनरपि उसमें कहीं भी श्रीराम को परब्रह्म नहीं कहा है, बल्कि स्पष्टतः नर कहा है। महर्षि ब्रह्मा ने महर्षि वाल्मीकि को श्रीराम का चरित्र लिखने को कहा तथा उस समय ब्रह्मा जी ने भी श्रीराम को अवतार नहीं कहा।

यदि इस मनगढ़न्त अवतार को दुर्जनतोषन्याय से सत्य मान भी लें, तो नियोग तो यहाँ भी सिद्ध हो रहा है, साथ ही सभी वानरवंशी क्षत्रिय नपुंसकतादि रोगों से ग्रस्त सिद्ध हो रहे हैं। अपने महापुरुषों को नपुंसकता आदि रोगों से पीड़ित बनाना क्या भारी पाप नहीं है? परन्तु इन लोगों का पाप–पुण्य से लेना देना रहा ही कब है? सभी पुराण ऐसे अनेक पापों के साक्षी हैं।

जब देव नियोग करें, महर्षि व्यास नियोग करें, तब तो पाप नहीं, परन्तु ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में नियोग की चर्चा करें, तो व्यंग्य करने लगते हैं। इसे पागलपन व धूर्तता

की पराकाष्ठा न कहें, तो क्या कहें ?

इस पर कुछ लोग कहेंगे कि वास्तव में नियोग प्रथा पुराकाल में प्रचलित थी, परन्तु उसमें शारीरिक सम्बन्ध नहीं होता था, बल्कि बिना शारीरिक सम्बन्ध के मन्त्रादि तपोबल से गर्भ धारण हो जाता था, वे इस लेख में महाभारत में महर्षि व्यास द्वारा किये गए नियोग प्रकरण वाले श्लोकों को बुद्धिपूर्वक पढ़ लें, व्यर्थ अटकल न लगायें, ईर्ष्या–पक्षपात आदि की पापाग्नि से बचें।

जो लोग नियोग प्रकरण को लेकर असभ्य भाषा में आर्य समाज तथा ऋषि दयानन्द पर टिप्पणियाँ करते हैं, वे अपने चाल–चरित्र पर एक दृष्टि डालकर देखें, तो पायेंगे कि विषयलम्पट असभ्य लोगों को इस विषय पर बोलने का कोई अधिकार नहीं है। हाँ, जो शिष्ट भाषा में आलोचना करते हैं, वे अवश्य संवाद योग्य हैं।

सर्वप्रथम हम महर्षि व्यास द्वारा महारानी अम्बिका एवं अन्य के साथ नियोग करके धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर तथा महारानी कुन्ती एवं माद्री द्वारा देवों के साथ नियोग करके पाण्डवों को जन्म देने के विषय में विचार करते हैं—

पौराणिकों के द्वारा आदर प्राप्त गीता प्रेस के अनुवादों तथा मूल श्लोकों से नियुक्त पतियों (व्यास जी एवं विभिन्न देवों) का सन्तान चाहने वाली महिलाओं के साथ साक्षात् शारीरिक सम्पर्क का ही प्रमाण मिलता है। पुनरपि महर्षि व्यास द्वारा एक वर्ष व्रत पालन करने की बात भी कही गयी, परन्तु परिस्थिति-वश बिना व्रत किये ही उन्होंने नियोग किया। 'काम-उपभोग' पद स्पष्ट करते हैं कि बिना शारीरिक सम्बन्ध के सन्तान का जन्म सम्भव नहीं है।

अब प्रश्न यह उठता है कि नियोग तो राजमहल के किसी बलवान् योद्धा के द्वारा भी किया जा सकता था, तब भूतल के तत्कालीन सबसे महान् ऋषि को इस साधारण से कार्य के लिए क्यों चुना गया? इस कार्य को साधारण बताने वाला कोई मन्दबुद्धि अथवा विषय लम्पट ही हो सकता है, बुद्धिमान् सदाचारी कदापि नहीं। पशुओं की भाँति बच्चों को जन्म देना अलग बात है, जबकि सुसन्तान को जन्म कोई विरला ही दे सकता है। आज कहने को तो इस धरती पर आठ अरब मनुष्य हैं, परन्तु उनमें से वेद एवं आर्ष ग्रन्थों के मन्तव्यों की दृष्टि से कोई मनुष्य है भी? कम से कम नियोग विषय पर भद्दी टिप्पणी करने वाले ऋषि दयानन्द विरोधी तो मनुष्य कदापि नहीं हो

सकते।

अम्बिका, अम्बालिका आदि से माता सत्यवती कोई साधारण सन्तान नहीं चाहती थीं, वे भूमण्डल के सबसे बड़े राज्य की बागडोर सम्भालने वाली श्रेष्ठ, धर्मात्मा, बलवान् व बुद्धिमान् सन्तान चाहती थीं। यहाँ विषय नियोग का था और नियोग–धर्म साधारण गृहस्थ धर्म अर्थात् सन्तति–जनन के कार्य से विशिष्ट है तथा उसकी अपेक्षा अधिक उच्च योग्यता की अपेक्षा रखता है। जहाँ काम का उपभोग भी हो और 'योगमूर्तिधर' विशेषण, जो इन्द्रादि देवों के विषय में लिखा, भी सार्थक बना रहे। शरीर व मन दोनों पर पूर्ण नियन्त्रण इतना हो कि दोनों का परस्पर कोई आकर्षण न हो, कोई काम चर्चा न हो, मन में धर्म व कर्त्तव्य का ही चिन्तन रहे, कामुकता का लेशमात्र भाव न हो, पुनरपि शरीर प्रजनन प्रक्रिया के लिए अनुकूल हो जाये।

यह सब कुछ एक साथ करना बहुत ही असाधारण कार्य है। इस विषय में वर्तमान मनुष्य से तो पशु–पक्षियों में अधिक योग्यता है। वे कामशक्ति–सम्पन्न होते हुए भी कामुक नहीं होते हैं। केवल ऋतुमती मादा के प्रति ही नर पशु–पक्षियों का

आकर्षण होता है। प्रजनन क्रिया सम्पन्न हो जाने और गर्भ धारण हो जाने के पश्चात् वे नर व मादा एक–दूसरे के प्रति काम के आकर्षण को नितान्त भूल जाते हैं। कुत्तों को देखो, वे ऋतुकाल में पागल की भाँति घूमते हैं, ऋतुमती कुतियों को देख कर अथवा दूर से उनकी गन्ध से ही वे कामोन्मत्त होते हैं। इसके अतिरिक्त वे परस्पर खूब खेलते, खाते, लड़ते–झगड़ते, परन्तु कभी एक–दूसरे को काम वासना की दृष्टि से नहीं देखते। यदि मानव में इतना भी सुधार आ जाये, तो आज संसार में कामलीला का घृणित व क्रूर खेल देखने को न मिले और न कृत्रिम गर्भ निरोधक साधनों के उपयोग का पापपूर्ण व्यवसाय फूले फले।

नियोग में एक प्रक्रिया यह भी सम्भव है कि गर्भधारण के पश्चात् स्त्री–पुरुष दोनों ही किसी विशेष यौगिक विभूति के द्वारा इस घटना को अर्थात् उस सहवास क्रिया को अन्तःकरण से भी पूर्णतः विस्मृत कर दें। उन्हें कभी आभास भी न हो कि उन्होंने प्रजनन क्रिया की भी थी। यह कार्य भी उच्च कोटि का सिद्धयोगी ही कर सकता है, न कि कोई साधारण पुरुष वा स्त्री। इस प्रक्रिया से उन दोनों का परस्पर कोई आकर्षण नहीं रहता और उत्पन्न सन्तान से भी नियुक्त

पुरुष वा स्त्री का कभी कोई आकर्षण नहीं होता।

नियोग विषय पर ऋषि दयानन्द पर टिप्पणियाँ करने वाले पहले अपनी इन्द्रियों व मन की चञ्चलता को दूर करने का अभ्यास करने का प्रयास करें, फिर कहें कि आर्यसमाजी किसी से भी किसी का नियोग करा लें। वे ऐसे पाप करते हैं, नाना कृत्रिम गर्भ निरोधक साधनों का उपयोग करते हैं, सारे सम्बन्धों को तार-तार करने का पाप करते हैं, इसलिए ही वे ऐसी भद्दी टिप्पणियाँ करते हैं, अन्यथा ऐसे अश्लील व कामुकता भरे शब्द उनकी वाणी व लेखनी से निकल ही कैसे सकते हैं?

पशु-पक्षियों के स्तर को प्राप्त करना ही आज मनुष्य के लिए कठिन है, तब नियोग तो एक परोपकारी, धर्मात्मा, बलवान्, प्रतिभावान् पुत्र वा पुत्री को जन्म देने के लिये होता है। उस समय प्रजनन कार्य करने वालों की स्थिति किसी उच्च समाधिस्थ योगी से निम्नतर नहीं, बल्कि उच्चतर ही होगी। योगी तो आत्मा व परमात्मा के स्वरूप का ही चिन्तन करता है, जबकि नियोग करने वाले युग्म को शरीर के प्रजननांगों को अपने कर्मों में नियुक्त करते हुए भी मन को समाधिस्थ रखना, परस्पर कोई कामजन्य आकर्षण न आने देना, उच्च सन्तति के

उच्च गुणों से युक्त आत्मा का आवाहन भी करते जाना और इन सब भावनाओं में आत्मा द्वारा पूर्ण सन्तुलन भी बनाए रखना किसी पूर्ण जितेन्द्रिय महापुरुष के वश की ही बात है। महर्षि व्यास, धर्मराज, इन्द्र, वायु आदि देव बहुत ही असाधारण महापुरुष थे और इनके साथ नियोग करने वाली देवियाँ भी असाधारण योगप्रतिभा से सम्पन्न थीं, तभी नियोग हुआ। ऐसे दिव्य पुरुषों को ही नियोग का अधिकार हुआ करता था, न कि किसी साधारण मनुष्य को। यह बात भी तब है, जब देवी कुन्ती व माद्री को भी नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करने वाली माताएँ मानें, जिसे मैं ऐतिहासिक सत्य नहीं मानता।

पाण्डवों के विषय में ऋषि के प्रमाण पर कोई यह कहेगा कि क्या आर्य समाज शाप व वरदान को मानता है? मेरी दृष्टि में किंदम ऋषि द्वारा महाराज पाण्डु को शाप देने की कहानी ही प्रक्षिप्त व मनगढ़न्त है। यह घटना महाभारत आदिपर्व के सम्भव पर्व के ११७ वें अध्याय में मिलती है।

"इसमें किंदम ऋषि कहते हैं कि मैं मनुष्य रूप में अपनी पत्नी के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाने में लज्जा अनुभव करता था। इस कारण स्वयं मृग का रूप धारण करके और अपनी

पत्नी को मृगी बनाकर अन्य मृगों के साथ वन में विचरते हुए अपनी पत्नी, जो मृगी के रूप में रहती थी, के साथ सम्बन्ध बनाते थे। उसी समय महाराज पाण्डु ने उस जोड़े को बाण मार दिया।''[३]

आइये, इस पर विचार करें—

कोई ऋषि कोटि का व्यक्ति जिस कार्य को करने में लज्जा का अनुभव करे, उसी कार्य को वह किसी पशु का रूप धारण करके और पत्नी को भी पशु बनाकर करे, उसे कोई ऋषि मान भी कैसे सकता है? मैं तो किसी ऋषि कोटि के व्यक्ति तो क्या, साधारण मनुष्य के लिए भी ऐसा कर्म निन्दित ही कहूँगा। इस कहानी का लेखक भगवत्पाद व्यासर्षि को बताना उससे भी बड़ा पाप है। धिक्! यहाँ एक बात यह भी है कि धर्मात्मा महाराजा पाण्डु वेदविरुद्ध एवं मनुस्मृति के विरुद्ध शिकार कैसे खेल सकते हैं और कैसे निरपराध मृग–मृगी को मार सकते हैं? इस प्रकार यहाँ ऋषि किंदम तथा महाराज पाण्डु दोनों को ही अधर्मी सिद्ध कर दिया, तब क्यों नहीं हम इस प्रकरण को

[3] गीता प्रेस, गोरखपुर। यहाँ मैंने विस्तारभय से श्लोकों सहित पूरा हिन्दी अनुवाद नहीं दिया है।

पापियों द्वारा प्रक्षिप्त मानें?

अब रही बात महाराज पाण्डु के नपुंसक हो जाने की, तो उस विषय में मेरा अपना मत यह है कि जब मूल कहानी ही अनर्गल प्रलाप होने से प्रक्षिप्त है, तब उसकी शाखा, फूल, पत्ती कैसे वास्तविक हो सकती हैं? इसलिए देवों द्वारा महारानी कुन्ती व माद्री को सन्तान प्रदान करने की घटना भी प्रक्षिप्त ही प्रतीत होती है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में इस घटना को और साथ में व्यासर्षि के द्वारा नियोग को भी ऐतिहासिक माना है। यहाँ हमारा मत है कि महर्षि व्यास का महारानियों के साथ नियोग का कारण स्पष्ट है, परन्तु महाराज पाण्डु की घटना का मूल ही प्रक्षिप्त व अनर्गल है। व्यस्तता में ऋषि दयानन्द ने इस बिन्दु पर ध्यान नहीं दिया, पुनरपि महर्षि व्यास की घटना ही नियोग की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

हाँ, यह हो सकता है कि महाराज पाण्डु किसी अन्य दुर्घटनावश नपुंसकता रोग से ग्रस्त हो गये हों, तब रानियों ने देवों के साथ नियोग किया हो, तब इसे सत्य माना जा सकता है। ऐसी स्थिति में नियोग प्रक्रिया पूर्ववत् ही समझनी चाहिए।

हमें तो इस पर भी विश्वास नहीं कि महाराज पाण्डु जैसे महान् योद्धा को ऐसा रोग हो गया, जो उस समय का महान् ज्ञान-विज्ञान दूर ही न कर पाया। यह प्रकरण ही मिथ्या है, पुनरपि मन्त्र शक्ति पर विचार करते हैं।

यदि मन्त्रों से सन्तान हो जाती, तो देवी कुन्ती को सूर्य देव ने मन्त्र शक्ति से पुत्र दे दिया, तो देवी कुन्ती को लज्जा का अनुभव क्यों हुआ, जो निर्दोष नवजात पुत्र को नदी में प्रवाहित कर दिया। इस सम्बन्ध में महाभारत में स्पष्ट लिखा है—

सूर्यदेव ने देवी कुन्ती को नियोग हेतु बहुत समझाया "**वेदाहं सर्वमेवैतद् यद् दुर्वासा वरं ददौ। संत्यज्य भयमेवेह क्रिवतां संगमो ममा॥ १३॥** सूर्यदेव बोले— शुभे! मैं यह सब जानता हूँ कि दुर्वासा ने तुम्हें वर दिया है। तुम भय छोड़ कर यहाँ मेरे साथ समागम करो।" (महाभारत, आदि पर्व, सम्भव पर्व, अध्याय-११०, गीता प्रेस, गोरखपुर) सूर्यदेव के बहुत आग्रह पर देवी कुन्ती समागम के लिए तैयार हुई।

यहाँ स्पष्ट ही देवों को कामपिपासु दर्शाकर बदनाम किया है, जो कुमारी कन्या को भी नियोग के लिए विवश करते हैं। दयानन्द एवं आर्यसमाज की निन्दा करने वाले पौराणिकों को

अपना यह पाप तो दिखाई नहीं देता। ऋषि दयानन्द ने केवल विवाहित स्त्री–पुरुषों को ही अति आपात्काल में नियोग का अधिकारी बताया और वह भी समाज की अनुमतिपूर्वक विधिवत् संस्कार करने के पश्चात्। यहाँ सूर्यदेव तो अकेली विवश कुमारी कुन्ती को नियोग के लिए विवश कर रहे हैं। न कोई सामाजिक स्वीकृति, न कोई संस्कार और न कुन्ती विवाहिता हैं और न उन्हें सन्तान की कामना है। इस पाप पर इन लोगों के मुँह पर ताले क्यों लग जाते हैं? यहाँ कोई मन्त्र विद्या का चमत्कार नहीं है, बल्कि शारीरिक संयोग ही दर्शाया गया है। मेरी दृष्टि में यह प्रकरण भी सूर्य देव एवं देवी कुन्ती को बदनाम करने के लिए जोड़ा गया है।

जहाँ तक मन्त्रों से सन्तान उत्पन्न होने की बात है, तब उस विषय में मेरा मत यह है कि यदि मन्त्रों से सन्तान हो जाती, तो देवों वा ऋषियों को विवाह की आवश्यकता ही नहीं होती और मनुष्य की उत्पत्ति अमैथुनी ही होती रहती। आज ये पौराणिक जगत् ही देव के साथ देवी का जोड़ा दर्शाता है, उसकी आवश्यकता क्या है? सभी महापुरुषों एवं देवियों को अकेला रहने पर भी सन्तान प्राप्त हो ही जाती। मन्त्र से सन्तान उत्पन्न करने में लज्जा–शंका का कोई स्थान ही नहीं होता।

पाण्डवों के विषय में मेरा मत यह भी है कि देवी कुन्ती व देवी माद्री की सन्तानों को धर्म, वायु, इन्द्र व अश्विनी कुमार जैसे देवों ने अपने पास रखकर सन्तानवत् शिक्षा दी हो और कालान्तर में पाण्डवों को उनकी ही सन्तान के समान मानकर देवों से उनकी उत्पत्ति की कहानी रची गयी हो। **मुझे लगता है—** सत्यार्थ प्रकाश से महाराज पाण्डु की सन्तान को नियोगज मानने की बात हटा देनी चाहिए, केवल महर्षि व्यास का ही उदाहरण रखना चाहिए।

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि नियोग में शारीरिक सम्बन्ध की आवश्यकता नहीं है, बल्कि वे लोग कृत्रिम गर्भाधान के द्वारा भी सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। यद्यपि ऐसा सम्भव हो सकता है, परन्तु जहाँ तक मैं पशुओं के विषय में जानता हूँ, कृत्रिम गर्भाधान से उत्पन्न पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता अपेक्षाकृत कम होती है। ऐसी स्थिति में विशेष आपात्काल में कोई रानी यह नहीं चाहेगी कि उसकी सन्तान दुर्बल व रोगी पैदा हो, क्योंकि ऐसी सन्तान कभी राज्य की रक्षा नहीं कर सकती, जिसके लिए कोई रानी नियोग करे।

कुछ सिरफिरे कहते हैं—

"महारानी अम्बिका ने महर्षि व्यास को देखकर भयवश नेत्र बन्द कर लिए, इस कारण अंधे धृतराष्ट्र का जन्म हुआ। इससे यह सिद्ध होता है कि नियोग शारीरिक सम्बन्ध नहीं, बल्कि वह विशेष मन्त्र शक्तिपात् की क्रिया है, अन्यथा भय से नेत्र बन्द होने का गर्भस्थ सन्तान से क्या सम्बन्ध?"

यही कुतर्क वे पाण्डु के जन्म को लेकर भी देते हैं। यह विषय गृहस्थों का है, जिस पर मैं कुछ कहने में असमर्थ हूँ और न यह सब जानने में मेरी कभी कोई रुचि रही है, परन्तु धूर्त लोगों द्वारा ऋषि दयानन्द जैसे निष्कलंक महापुरुष का अपमान नहीं देख सकता, इस कारण **चरक संहिता शारीर स्थानम् ८.६** को यहाँ उद्धृत करने को विवश हुआ हूँ। वह प्रकरण इस प्रकार है—

"**तत्रात्यशिता क्षुधिता पिपासिता भीता विमनाः शोकार्ता क्रुद्धाऽन्यं च पुमांसामच्छन्ती मैथुने चातिकामा वा नारी न गर्भं धत्ते। विगुणां वा प्रजां जनयति। अतिबालामतिवृद्धां दीर्घ रोगिणीमन्येन वा विकारेणोपसृष्टां वर्जयेत्। पुरुषेऽप्येत एव दोषाः।**

तब जो स्त्री बहुत भोजन किये हो, भूखी हो, प्यासी हो,

डरी हुई हो, पति से विपरीत या दुःखित चित्त वाली हो, शोक से पीड़ित हो, क्रोध में हो, पति से अतिरिक्त दूसरे पुरुष को चाहती हो वा मैथुन या भोग करने की अति अधिक इच्छा करती हो, ऐसी स्त्री गर्भ को धारण नहीं करती। यदि गर्भ रह जावे, तो विपरीत गुण वाली सन्तान को जन्म दे देती है। पुरुष को चाहिये वह अति बालक अवस्था की, अति वृद्ध अवस्था की, चिरकाल की रोगिणी वा जो और किसी रोग से पीड़ित हो, तो उससे मैथुन न करे। इसी प्रकार स्त्री को भी चाहिये कि यदि पुरुष उक्त दोषों, त्रुटियों वाला हो अर्थात् अति बालक हो अति वृद्ध हो, चिरकाल से रोगी हो वा और किसी रोग से पीड़ित हो, तो उसके साथ सहवास न करे।''

क्या अब भी कोई सिरफिरा यह मानकर कि महिला व पुरुष की मनः स्थिति का सन्तान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, अपनी धूर्तता का परिचय देगा? इतना सब लिखने के उपरान्त भी मैं यही कहूँगा कि यह विषय अत्यन्त उच्च कोटि के योगी, देवों व ऋषियों वा श्रेष्ठ धर्मात्मा राजा–महाराजाओं का है, वह भी सन्तान प्राप्ति की अपरिहार्य इच्छा होने पर, जिससे राष्ट्र वा विश्व को कोई महान् पुरुष वा स्त्री प्राप्त हो सके, अन्यथा **वर्तमान मनुष्यों को इसकी चर्चा भी नहीं करनी चाहिए।**

ऋषि दयानन्द के नियोग विषय पर अश्लील भाषा में व्यंग्य करने वाले यही बता दें कि आपकी दृष्टि में महर्षि व्यास को महर्षि पराशर ने किस पद्धति से उत्पन्न किया? कुँवारी कन्या सत्यवती के साथ नाव में ही अँधेरा करके वहीं गर्भ धारण करा दिया। ये बन्धु बताएँ कि यह कौनसी प्रथा थी? मैं तो मानता ही नहीं कि यह घटना सत्य है, बल्कि मैं मानता हूँ कि ये सब पाप वेद व भारत विरोधियों ने हमारे देश के वैदिक ब्राह्मणों व क्षत्रियों को बदनाम करने के लिए जोड़े हैं, परन्तु आप उन सभी पापों को सगर्व सीने से चिपकाए हैं। कोई बड़ा ऋषि या कोई देव आपने नहीं छोड़ा, जिस पर आपने कीचड़ नहीं उछाला हो, फिर चले भगवत्पाद परमर्षि ब्रह्मा से लेकर महर्षि जैमिनी पर्य्यन्त आर्ष परम्परा के संवाहक ऋषि दयानन्द पर व्यंग्य करने! यह पाप हमारे देश व वैदिक सनातन धर्म को ले डूबेगा। परन्तु प्रतीत होता है कि आपने इन्हें डुबोने का ही संकल्प ले रखा है। सम्भव है कि आप भी किसी बड़े प्रलोभन में फँसकर यह पाप कर रहे हों। महर्षि वेदव्यास के जन्म की पापपूर्ण मिथ्या कथा गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित महाभारत आदि-पर्व के सम्भव पर्व अध्याय १०४ में पढ़ सकते हैं। हम ऋषियों पर लगे कलंक को धोना चाहते हैं, परन्तु आप तो

विचित्र प्राणी हैं।

आर्य समाज ने तो अपने जन्म काल से ही इस गम्भीरता को समझ लिया था, इसी कारण अपने गुरु ऋषि दयानन्द की इस व्यवस्था को वर्तमान समय के अनुकूल न जानकर नियोग के स्थान पर विधवा विवाह की परम्परा का प्रारम्भ किया, परन्तु नियोग विषय पर ऋषि दयानन्द को रात–दिन गाली देने वाले पौराणिक तथाकथित सनातनी आज तक कामाख्या मन्दिर में रक्त की नदियाँ बहा रहे हैं। सोमयाग में अभी भी निरीह प्राणियों की हत्या करके उसे स्वर्ग प्राप्त करा रहे तथा स्वयं भी स्वर्ग प्राप्ति की कामना कर रहे हैं, खजुराहो के मन्दिर की अश्लील मूर्तियाँ आज भी कुछ पौराणिकों की भ्रष्ट कामलीला की साक्षी हैं। विदेशी लोग इन अश्लील मूर्तियों को देखकर सनातन धर्म की कैसी गुण गरिमा गाते होंगे? आज यहाँ जो बलिप्रथा बन्द हुई भी है, वह भी सरकारी कानूनों के भय से तथा आर्य समाज के प्रभाव से हुई है, उस पर भी कहीं–कहीं किसी फल को काटकर पशुबलि की प्रथा का निर्वहन करते देखे जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे मन में आज भी बलि देने के पाप को बिठाये हुए हैं और आर्य समाज की नियोग प्रथा को लेकर आलोचना करते हैं, जो प्रथा आर्य समाज में न

तो ऋषि दयानन्द के समय रही और न बाद में ही कभी प्रचलन में रही। आश्चर्य है कि काँच के महल में रहकर भी सुदृढ़ भवनों में रहने वालों पर पत्थर फेंक रहे हैं।

मैं आर्यसमाज की शिरोमणि सभाओं एवं 'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थ के प्रकाशकों से निवेदन करता हूँ कि वे इस लेख को पढ़कर सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में अपेक्षित संशोधन कर लें। ऋषि के विश्वासघाती लेखकों की कपटता के कारण ऋषि को बदनाम न होने दें। इस विषय में वे जितनी शीघ्रता करेंगे, उतना ही आर्यसमाज एवं मानवता के हित में होगा।

यहाँ हमें ऋषि दयानन्द के समय की परिस्थितियों पर बहुत गम्भीरता से विचार करना चाहिए। उन्हें सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण को निरस्त करना पड़ा। 'पञ्चपञ्च नखा भक्ष्या...' वाला प्रकरण भी ऋषि दयानन्द की जानकारी में आते ही उन्होंने हटा दिया। दुःख की बात है कि व्याकरण महाभाष्य में आज तक सभी विद्वान् इस पाप को ढो रहे हैं। ऋषि दयानन्द के विश्वासपात्र पाचक ने धन के लोभ में आकर तीव्र विष तक दे दिया, तब द्रव्य के लोभ में अथवा अन्य किसी प्रतिशोधवश उनके लेखक पण्डितों ने उनके ग्रन्थों में

गुप्त रूप से मिथ्या वा आपत्तिजनक बातें जोड़ दी हों, तो आश्चर्य ही क्या है?

भीमसेन शर्मा उनके शिष्य थे, परन्तु बाद में आर्यसमाज छोड़कर चले गए। ऐसी स्थिति में क्या यह सम्भव नहीं कि उन्होंने ऋषिकृत ग्रन्थों में कुछ घोटाला किया हो? उनके वेदभाष्य के हिन्दी अनुवाद अनेकत्र गलत हैं। इसलिए आर्य विद्वानों तथा निष्पक्ष विद्वानों का यह परम कर्त्तव्य है कि सभी ऋषिकृत ग्रन्थों पर मिलकर मंथन करें। ऋषि दयानन्द ने स्वयं कहा था कि यदि मेरी बातों में कुछ असत्य प्रतीत होता हो, तो विद्वानों को चाहिए कि उसे सुधार लें। अन्यथा 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' होकर आर्यसमाज भी एक सम्प्रदाय हो जाएगा। **इसलिए सार्वदेशिक आदि आर्य सभाएँ जागें, ऐसा न हो कि उनकी नींद आर्यसमाज को पूर्णतः निगल ले।**

इसी प्रकार मैं ईमानदार पौराणिक तथा कथित सनातनधर्मी विद्वानों से भी निवेदन करूँगा कि आज विश्वभर में वेद, आर्ष ग्रन्थों, देवों, ऋषियों व अन्य महापुरुषों को नीचा दिखाने का भयंकर षड्यन्त्र चल रहा है। इसके लिए विदेशों से कुछ भारतीय गद्दारों को बहुत बड़ी मात्रा में धन भी मिल रहा होगा।

हमारे व आपके शास्त्र (तथाकथित पुराणों को छोड़कर), महापुरुष व संस्कृति आदि सब एक ही हैं। इसलिए इनकी रक्षा के लिए शास्त्रों में की गई मिलावट तथा मिथ्या भाष्यों को दूर वा संशोधित करने में हमारे साथ मिलकर कार्य करें।

हमारा 'वैदिक रश्मि विज्ञान' इस विषय में मील का पत्थर सिद्ध होगा। आप अपने सनातन धर्म को अनाड़ी, पाखण्डी व स्वार्थी लोगों के हाथ का खिलौना न बनने दें, अन्यथा वेद–विरोधियों के घृणित स्वप्न पूरे हो सकते हैं और **सनातन धर्म के साथ–साथ भारत का सम्पूर्ण विनाश हो सकता है।**

जय माँ वेद भारती